संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ३१

महाकवि आचार्य विद्यासागर विरचित

तोता क्यों रोता ?

(कविता संग्रह)

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

तोता क्यों रोता ?

कृतिकार : महाकवि आचार्य विद्यासागर

संस्करण : २८ जून, २०१७

(आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ११००

वेबसाइट : www.santshiromani.com

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर-एफ , इन्डस्ट्रीयल एरिया गोविन्दपुरा

भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को श्रृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामत: मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी॰ लिट्॰, पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में

छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की श्रृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्य गुरुदेव ने तोता क्यों रोता ? की रचना १९८४ में की थी। प्रतीकात्मक शैली में इस कृति का सृजन किया है। ग्रन्थ शीर्षक वाली कविता में दान के माहात्म्य को नाना आयामों से प्रस्तुत किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपने मानस संकेत में गुरु से प्राप्त वरद-हस्त ही जीवन का चरण संचरण माना है। ५५ मुक्त छन्द में रचित कविताओं के संग्रह रूप आपका यह तृतीय काव्य-संग्रह है। इसमें निबद्ध छोटी-छोटी सी कविताएँ अपनी अभिव्यक्ति कराने में पूर्ण सक्षम हैं।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

तोता क्यों रोता?

'तोता क्यों रोता?' संज्ञक मुक्त काव्य-संग्रह आचार्यश्री के अब तक प्रकाशित संग्रहों में अन्तिम है। एक अप्रकाशित संग्रह और है, जिसका नाम है 'मुक्तक-शतक'। इसकी एक टंकित प्रति आचार्यश्री के मुनि-संघ से हमें प्राप्त हुई है, जिसकी संक्षिप्त समीक्षा हम इसके पश्चात् करेंगे। सन् १९८४ में प्रथम बार प्रकाशित इस आलोच्य संग्रह में ५५ कविताएँ संग्रहित हैं, जो 'नर्मदा का नरम कंकर' संग्रह की कविताओं से कुछ सरल और 'डूबो मत, लगाओ डुबकी' संग्रह की कविताओं के समकक्ष हैं, किन्तु इसका नाम इसी में संग्रहित इसी नाम की कविता के अभिधान पर रखा गया है, जो मुनि भ्रामरी चर्या-एषणा समिति-से सम्बन्ध रखती है; इसीलिए 'तोता क्यों रोता?' कविता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री स्वयं इस संग्रह के सम्बन्ध में इसके 'मानस संकेत' नामक आमुख में लिखते हैं-

''कृपा हुई गुरु की। वरद हस्त रहा इस मस्तक पर। अणु-अणु का अतिशय ज्ञात हुआ। कण-कण का परिचय प्राप्त हुआ। पर प्राप्तव्य तो पर से परे है, इस सन्धि की गन्ध को भी इसकी नासा ने पी डाली। उसी का परिणाम है यह।''

आगे वे कहते हैं, कि एक दिन मेरे चञ्चल मन ने प्रेरणा दी-''मैं आचार रहित विचारों का अधिकरण हूँ प्रकृति का पुत्र, लाड़ला। किन्तु तुम हो विशुद्धतम करण। निश्चित ढलोगे तुम शाश्वत सुख-सत्ता के अनन्त अधिकरण में। इसलिए पथ पूर्ण होने से पूर्व इस युग को कुछ तो दो। और मन मौन में डूबता है।''

''मन की प्रेरणा से साधक पुरुष प्रेरित हुआ। सुदूर पीछे रहे, अमूर्त पथ के पथिकों पर करुणा आई और सूचना फलकों के रूप में इन शब्दों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ता है। यह साधक, सहज गति से और पथिकों से

विशेष निवेदन करता है कि वे इन सूचना फलकों को साथ लेकर न चलें, वरन् इनसे सूचित भाव का अनुसरण करें और शीघ्र सुख का वरण करें।"

इससे प्रतीत होता है कि गुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर द्वारा प्रदत्त ज्ञान के परिणामस्वरूप इस रचना का आविर्भाव हुआ। वैसे संत-कवि अपने समस्त कार्य को गुरुकृपा का ही फल मानते हैं। पुनः मन ने विश्व को कुछ देने के लिए साधक को प्रेरणा दी, उसी से प्रेरित होकर गुरुज्ञान को इसमें लेखनीबद्ध किया है, साथ ही आचार्यश्री का कहना है कि पाठक इन कविताओं के पठन-पाठन में ही न उलझे रहें, वरन् इनमें अन्तर्निहित भावों का मनन करें, उनको जीवन में सक्रिय रूप से उतारें, जिससे चरम-सुख का वरण कर सकें।

इस संग्रह की प्रथम कविता 'नयन-नीर' में कवि ने विश्वास व्यक्त किया है कि कृतकार्य होने के लिए प्रभु में प्रीति और स्वयं में प्रतीति पर्याप्त है, किन्तु वह प्रार्थना करता हैं कि इन दोनों की प्राप्ति से पूर्व 'नयनों का नीर' कम न हो जाए। संसार पथ पर पाथेय आस्था-प्रतीति ही है। गन्तव्य कितना ही दूर हो, पर आस्था के गवाक्ष से यदि वह दिख जाए तो यही प्रार्थना है कि तरुण चरणों की पीर कम न पड़ने पाए। आज सतयुग नहीं कलियुग है। अतः धनदेवी लक्ष्मी अभय बाँट रही है और वाग्देवी सरस्वती मौन विनम्रभाव से उसके चरणों में प्रणिपात कर रही है, इस प्रकार 'पूज्य, पूजक बना' हुआ है-

आज! लक्ष्मी का हाथ / ऊपर उठा हैं।
अभय बाँट रहा हैं / परसाद के रूप में...
लजीली सी / लचीली सी / नतनयना / गतवयना
सती सरस्वती / प्रणिपात के रूप में।

संसार-पथ पूर्ण होने पर सुख का अन्तिम अधिष्ठान उपलब्ध हो जाता है, अतः वह एक ऐसा नवनीत है, जिसका पुनः मन्थन नहीं होता, एक ऐसा विज्ञान है, जिसका फिर कथन नहीं होता तथा संगीत का एक ऐसा उत्थान-आरोह है, जिसका पुनः पतन नहीं होता। संसार पथ के दो

यात्री हैं–एक रागी और दूसरा विरागी। रागी चिन्ता में निमग्न रहता है और विरागी चिन्तन में। चिन्तन में मानस के कूल पर समता का प्रकाश है और चिन्ता में तामसता का विलास, अन्तिम ह्रास है। एक का जीवन तत्त्व चिन्तन के साथ बढ़ता है तो दूसरे का विषय-चिन्ता के साथ, एक साधु है, तो द्वितीय स्वादु।

संसार-यात्री की कामना पूरी ही नहीं होती। उसके पास पंचखण्ड का प्रासाद है, अप्सरा-सी प्रमदा प्राणप्रिया भार्या है, पुत्र एवं भोगोपभोग सम्पदा भी है फिर भी ईश्वर से "प्रार्थना करता है कि प्रभो! कुछ और दो, पड़ोसी का यह दशखण्ड का भवन मेरी आँखों में किरकिरी बना हुआ है।" जीव सदा से पर-पर फूला हुआ तन-रंजन में व्यस्त रहा है, लोकेषणा की 'प्यास' इसे सताती रही है या फिर जन-रंजन ही इसका ध्येय बना रहा है, किन्तु आज आपकी कृपा से पथ मिल जाने पर–

"शूल भी फूल रहा है / सुगन्धित महक रहा है।
नीराग निरंजन में / चिर से पला / कन्दर्प-दर्प ध्वस्त रहा है
यह सब आपकी कृपा है / हे प्रभो!

प्रत्येक व्यक्ति का दिमाग हर वक्त चलता रहता है, यदि वह संयत हो तो वरदान होता है और यदि विषयों का गुलाम एवं बेलगाम हो तो कमबख्त खतरनाक शैतान होता है।

युगों-युगों से दुखद अभावों के शूल जीवन-पादप के मूल में चुभ रहे थे, किन्तु हे आदिम सत्ता! तेरी कृपा से अब वे सुखद फूल बन गये हैं, उस जीवन-पादप के पत्र कषाय-तपन से शुष्क होकर गिर गये थे, किन्तु तेरी ही दया के सलिल-सिंचन से सुर-तरु से हरे-भरे हो गये हैं तथा जो वयोवृद्ध आशा भव-भव का वैभव पाने अब तक 'मन की खटिया' पर पड़ी जी रही थी, वह अब दिवंगत हो गई है और यह ही नहीं सब कुछ धूल हो गया है, भूल के गर्त में चला गया है।

सन्त कवि धर्मात्मा की प्रथम पहचान बतलाते हैं–

"मेरा सो खरा नहीं / खरा सो मेरा

वाणी में मृदुता / तन-मन में ऋजुता / नम्रता की मूर्ति।

उनका कहना है कि अनुचित रूप से धनार्जन पाप की एवं समुचित रूप से अर्जन पुण्य की निशानी है, ठीक है "कीचड़ में पद रखकर लथपथ हो निर्मल जल से स्नान करने की अपेक्षा कीचड़ की उपेक्षा कर दूर रहना ही बुद्धिमानी है।"

इस संसार में अनेक वक्ता धन-कंचन की आश और पाद-पूजन की प्यास से अवसरवादी हो कथन का ढंग ऐसे बदल देते हैं, जैसे गिरगिट रंग बदल लेता है। मानव जीवन एक दीपक है, जिसमें तेल दग्धप्राय है, बाती बुझने वाली है, किन्तु उसमें आश-तृष्णा-अबुझ है। पर हे प्रभो! मेरे में तो तेरे दर्शन की आश अबुझ है।

मन बड़ा चंचल है। अत: कवि कहता है कि हे मन! यदि तुझे रमना ही है तो श्रमण में रम या चरम-चर्म-तन में रहने वाले आत्मा में रम, इस चर्म में चरम सुख कहाँ है? अत: नरम-नरम इस चरम में न रम-

"अरे! मन / तू रमना चाहता हैं /
श्रमण में रम / चरम चमन में रम
सदा-सदा के लिए / परम नमन में रम
चरम में चरम सुख कहाँ / इसलिए अब
स्वप्न में भी भूलकर / नरम नरम में / न रम! न रम!!"

प्रबुद्ध आत्मा यह समझती है कि उसका वतन यह नहीं है वरन् ज्ञान गुण का केतन ही उसका वतन है। संसार-सागर में प्रलोभनों की लहरें हमें आकृष्ट करती हैं और हम उनमें गहरे उतरते चले जाते हैं तभी कोई ध्वनि सुनाई देती है-

"प्रकृति को मत पकड़ो / पर
परखो उस / वे क्षणिकायें है
पकड़ में नहीं आती / भ्रम-विभ्रम की जनिकायें हैं,
तुम पुरुष हो / पुरुषार्थ करो / कभी न होना
किसी से प्रभावित / भावित सत् से होना / 'जो हैं'।

संसार में तामसता और राजसता की रक्ताभ दु:खदायी है, किन्तु मृदुतापूर्ण हरीतिमा की हरिताभ–'हरिता की हँसी' सर्व सुखदायी है।

प्रकृति–प्रमदा पुरुष से लिपटी तो हरिताभ हँस पड़ी और गन्धभरी रक्ताभ प्रणय–कली महकी। इस क्रिया में पुरुष सचेत था, परन्तु प्रकृति पुरुष की जिन आँखों में डूबी, उनमें हीराभ मिश्रित नीलाभ बस रही थी, यही प्रकृति के 'छुवन' का कारण थी। इस धरातल पर सत्य का स्वागत तो है, परन्तु बहुमत के आधार पर। यहाँ सर्वत्र 'अहं का हुंकार' है, जिससे हित निराकृत हो रहा है। लोग अंधों को आश्रय नहीं देते, अरे भाई! उन्हें आलोक दो, अपने साथ मिला लो। सरवर के तट पर बालक लहरों को पकड़ना चाहता है, किन्तु तट फेन के मिष हँसता है, पर पता नहीं बालक पर या बालक के पालक पर।

'मन की मौत' को सन्त–कवि स्मरण का मरण बतलाते हैं और स्मरण का मरण ही यथार्थ ज्ञान है। अकर्मण्यता इस पृथ्वी पर जीवन का 'प्रलयकाल' है क्योंकि अकर्मण्य की छाँव में जीवन समाप्त हो जाता है। पेट इन्द्रियरूपी नागिनों के लिए पेटी के समान है, पेट यदि भरा हो तो ये भूख से बाहर निकल पड़ती हैं और यदि पेट रिक्त हो तो ये बन्द रहती हैं। जीव के पद पाप से बोझिल हैं, अतएव प्रभु आँखों से ओझल हैं। जिस गृहस्थ के पास कौड़ी भी नहीं, वह कौड़ी का नहीं और जिस श्रमण के पास कौड़ी भी है वह कौड़ी का नहीं, क्योंकि–

"एक की शोभा / माया हैं / राग-रंग...
और एक की / मात्र काया / त्याग संग।

सत्पुरुष भुक्ति–मुक्ति की चाहना न कर सदा यह चाहता है कि उसके हृदय में तामस के प्रतिकूल 'समता' भर जाए। बिल्ली के पंजे जहाँ हिंसा करते हैं, वहीं वे अपने शिशुओं का रक्षण भी करते हैं, पर तात्त्विक दृष्टि से न वे हिंसक हैं, न अहिंसक। हिंसक–अहिंसक तो है जो अन्दर बैठा है, वह अव्यक्त है, वही विश्व को भुक्ति बनाता है और वही मुक्ति दिलाता है। भुक्ति और मुक्ति उस व्यक्ति की ओर युगपत् ताकती रहती हैं,

जो सम्यक् साधन, सम्यक् शक्ति एवं सद्भक्ति लेकर एक सत्पथ का पंथी बना है किन्तु जो द्विमुख होता है, वह अनन्त का सुख नहीं चख सकता–

द्विमुख पंथी 'सो' /पथ पर चल नहीं सकता
अनन्त का फल चख नहीं सकता।

अनन्त का सुख चखने के लिए 'संन्यास' आवश्यक है, परन्तु वह संन्यास सबसे नाता तोड़कर वन की ओर मुख मोड़ना नहीं है, वरन् बिना भेदभाव से, बिना खेदभाव से सबके साथ साम्य का नाता जोड़ना तथा 'मैं' को विश्व की ओर मोड़ना है। सन्त का निजी अनुभव है कि गुरुकृपा से साम्यधर यति के समक्ष कठोर पाषाण हृदय भी मोम बन जाते हैं, आग बरसाते प्रचण्ड प्रभाकर भी शरद-सोम बन जाते हैं एवं भय से निःसंज्ञ चेतना की समग्र सत्ता अभय-जागृत हो जाती है और ओंकार की सुखद मधुर ध्वनि श्रवणों में गूँजने लगती है।

संसार में घोर-अवगुणी में भी एक गुण तो रहता ही है 'कुटिया' में भी एक प्रवेशद्वार तो होता ही है। अतः निराश न होकर व्यक्ति को याचना की आस न कर 'अनमोल की आस' करनी चाहिए, क्योंकि याचना में यातना है–

याचना का चोला पहना / यातना का पहना गहना।

गीत-संगीत जीवनभर सुना, पर इस जीव की प्यास न बुझी, वरन् और बढ़ी। अतः अब तो इच्छा यही है कि नीराग के 'माहौल' की प्यास जग जाए। यदि व्यक्ति की 'संयत आँखें' हों तो सत्य व्यक्त हो जाता है। एक भ्रमर दल कागज के गुलाब-पौध पर लगे लाल-लाल फूलों पर मुग्ध हो गया, जो मधुर मौन भाषा में आमन्त्रण दे रहे थे। भ्रमर दल ने दृष्टिपात किया आँखों का पेट भर गया, परन्तु नासा की भूख उभर आई, परन्तु गन्ध न मिली। अतः वह चिन्ता मग्न हुई, तभी स्पर्शा ने स्पर्श कर उसे समझाया–अरी भोली!

यहाँ प्रकृति नहीं हैं / मात्र प्रकृति का अभिनय है
या प्रकृति का अविनय है

माया, छल / ये फूल तो हैं / पर! कागद के हैं।

यह सारा संसार एक विशाल 'नाटक' है। हे जीव! तू भाँति-भाँति के भेष धर कर इसमें भाग तो ले पर 'ना+अटक', इसमें अटक ना देखो! सगुण ब्रह्मरूप परमहंस या निर्ग्रन्थ आत्माएँ निर्गुण ब्रह्म होना चाहती हैं, परन्तु नीलगगन लोकाकाश में विद्यमान पदार्थ बाधा बने हुए हैं। वे मुनिवर इस वैषयिक क्षेत्र में पूर्ण अन्ध एवं बधिर बने हुए केवल ओंकार ध्वनि-अनहद नाद को ही सुनते हैं।

इसी प्रकार जीव को चेतना में लीन रहकर सुधा-पीयूष चखना चाहिए, क्योंकि ऐसे अवतारी पुरुष पुनः इस संसार में नहीं आते, जिस प्रकार घृत पुनः दुग्ध नहीं बनता। हम माया की छाँव में छले जा रहे हैं। हमें चाहिए कि हम दो हृदयों को काटने वाली कैंची न बनें वरन् कटे हुओ को सुई बनकर मिलाएँ।हम पदार्थों का ज्ञान कर विषयों में भूल जाते हैं, परन्तु विषय-ज्ञान सराग है, अतः हमें सम्यग्दृष्टि होकर ज्ञान की उपासना करनी चाहिए। निरभिमान दाता सत्पात्र को पाकर दान देते ही हैं, पुनः पात्र भी कुछ प्रतिदान करते हैं। मेघ ने सत्पात्र पृथ्वी को जल दिया तो पृथ्वी ने भी मेघ की कालिमा को धो डाला, इसीलिए तो मेघ वर्षा के पश्चात् श्वेत दृष्टिगोचर होता है-

धरती ने बादल की कालिमा
धो डाली /अन्यथा
वर्षा के बाद / बादल दल / विमल होते क्यों?

शुक्तिका में मुक्तिका होती है, परन्तु शुक्तिका एक बार भी झाँक कर नहीं देखती, इसी प्रकार हम भी बहिर्मुखी बने रहते हैं, अन्दर देखते ही नहीं कि हमारे अन्दर ही वसन्त बहार है। अनेक बार ऐसा भी होता है कि हम सामने खड़े पात्र को भी नहीं देख पाते। एक प्रसंग के द्वारा कवि अत्यन्त रोचक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि निदाघ का काल है, प्रचण्ड मार्तण्ड धरातल को तपा रहा है, एक आम्र पादप मधुर पीत पक्व फलों से लदा पात्र को छाया एवं आहार-दान देने खड़ा है। धन्य भाग्य! एक

निःसंग पात्र आया और मौन खड़ा हो गया, दान नहीं माँगा। दाता पादप का मन कलुषित हो गया, मौन भाषा में बोला–मेरा अपमान, दाता से याचना नहीं की, प्रशंसा तक नहीं और फिर वह दान से विरत रहा। पात्र भी निर्ग्रन्थ था, भला वह याचना क्यों करता?, उसने भी मौन भाषा में कहा–आश्चर्य, दाता प्रशंसा चाहता है, सम्मान चाहता है, हम तो विरक्त हैं, याचना क्यों करें? इस मौन सम्भाषण को वृक्ष पर बैठा एक तोता सुन रहा था। उसने सहर्ष सोचा कि पुण्योदय में ही इस सत्पात्र के करपात्र में एक आम्र फल डाल देता हूँ, किन्तु इसी समय पात्र ने कहा–यह भी मुझे स्वीकार्य नहीं, क्योंकि यह पर पदार्थ है, तुम्हारा नहीं। तोता की आँखों में आँसू आ गये, गला रुँध आया। इस कारुणिक दृश्य को देखकर सर्व सुखदा वायु ने आकर सहज भाव से एक शाखा को हिलाकर एक पक्व समधुर फल पात्र के करपात्र में डाल दिया। नीर, क्षीर में गिरा और क्षीर बन गया। अतिथि की पीठ फिरते ही अन्य पक्व फल उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा में सुदूर तक उन्हें निहारते रहे। तोता की आँखों में अभी भी आँसू थे, वह रो रहा था कि दुर्भाग्य! काश में मनुष्य होता तो पात्र को दान दे पाता।

तोता की भाँति अनेक निरीह इसी प्रकार 'गीली आँखें' किये विवशता वश सत्कार्य नहीं कर पाते। यहाँ पर मानस जल रहा है, उसमें लहरें उठ रहीं हैं, जो उसकी विवशता पर हँस रही हैं और अभाव के बड़वानल ने उसके जीवन सत्वों को भस्म कर दिया है। वे ही राख बनकर काले-काले बालों के मिष बाहर आ गये। परन्तु जीवन में 'सातत्य' है, जो कली कल मुकुलित थी, आज खुली है और कल काल-गाल में कवल बन जाएगी परन्तु उसका 'सत्' सतत् रहेगा। संसार की आभा प्रकृति की गन्ध है, जो अनेकरूपा है–नीलाभ, हीराभ, हरिताभ और रक्ताभ। अब तक पुरुष ने इसे इन्द्रियों द्वारा पकड़ रखा था, परन्तु अब यह मुनि है, निःसंग है, अब वह इस पुरुष को पकड़ना चाहती है, परन्तु वह आभा डूब चुकी है–मृतप्राय है।

इस संग्रह में अधिकांश कविताएँ लघु आकार की हैं, केवल कुछ कविताएँ ही दीर्घाकार हैं। अनेक कविताओं में बड़े सुन्दर व्यंग्य हैं जैसे–

'पूज्य, पूजक बना' कविता में कहा है कि कलियुग में पूज्य सरस्वती, लक्ष्मी की पूजक बनी हुई है। 'गिरगिट' में आज का वक्ता और नेता गिरगिट की भाँति रंग बदलता है। 'चुनाव' कविता में भी एक व्यंग्य है, कि डूबता हुआ मनुष्य किनारा पाने के लिए चुनाव का नारा लगाता है। 'काया माया' में शब्दों की क्रीड़ा से कैसी मनोरम चुटकी ली गई है, कि जिस गृहस्थ के पास कौड़ी भी नहीं है वह कौड़ी का नहीं और जिस श्रमण के पास कौड़ी भी है वह कौड़ी का नहीं है।

आचार्यश्री की लेखनी में कुछ ऐसा जादू है कि नया भाव उद्गत हुआ कि शब्दों का साँचा स्वयं ढल गया। उन्होंने ऐसे भाव-रत्नों को इस काव्य-माला में गुम्फित किया है कि सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क में आ ही नहीं सकते। वे चिन्ता और चिन्तन का अन्तर बतलाते हुए लिखते हैं कि चिन्तन समता का प्रकाश है तथा चिन्ता तामसता का विलास। उर्दू शब्दों के माध्यम से किस सफाई से वे गुलाम दिमाग को कम्बख्त कहते हैं कि "कोई हरकत नहीं है, हरगिज कह सकता हूँ, यह हकीकत है कि हर वक्त हर व्यक्ति का दिमाग चलता तो है, यदि संयत हो तो वरदान होता है, किन्तु विषयों का गुलाम हो और बेलगाम हो, तो कम्बख्त खतरनाक शैतान होता है।" 'मन की खटिया' में वयोवृद्धा आशा को मुनि के मन की खटिया पर लेटा हुआ बतलाया है, जो दिवंगत हो चुकी है। 'पंकिल पद' में यह सुझाव दर्शनीय है कि कीचड़ में पग रखकर पुनः शीतल जल से धोने की अपेक्षा कीचड़ में पैर न रखना बुद्धिमत्ता है। 'कैंची नहीं, सुई बन' में शिक्षा दी गई है, कि पृथक् करने का कार्य त्यागकर मिलाने का कार्य करना चाहिए।

कहाँ तक लिखें एक से एक सुन्दर शब्द, एक से एक मनोरम वाक्य, एक से एक मनोज्ञ भाव और एक से एक चारुतर शब्द-अर्थ-भाव-विन्यास इन छोटी कविताओं में उपलब्ध होता है।

❑ ❑ ❑

अनुक्रम

नयन-नीर

प्रभु के प्रति किस में ?

इस में...

प्रीति का वास है

प्रतीति पास है

पर्याप्त है यह,

अब इसकी

नयन-ज्योति

चली भी जाय!

कोई चिन्ता नहीं,

किन्तु

कहीं ऐसा न हो,

..................कि

प्रभु-स्तुति से पूर्व

प्रभु-नुति से पूर्व

इसके

करुण-नयनों में

नीर कम पड़ जाय।

❑❑❑

चरण-पीर

पथ और पाथेय का
परिचय क्या दूँ ?
प्रायः परिचित हैं
नियम से जो
आदेय दिखाते,
पथ अभी
भले ही दूर हो अपरिमित...!
परवाह नहीं
किन्तु
कहीं ऐसा न हो
कि
आस्था के गवाक्ष में से
गन्तव्य दिख जाने से
इसके
तरुण चरणों की
पीर कम पड़ जाय।

❑❑❑

पूज्य, पूजक बना

यह सतयुग नहीं है
कलि-युग है,
भीतर ही भीतर
अहं को रस मिलता है।
आज! लक्ष्मी का हाथ
ऊपर उठा है
अभय बाँट रहा है
परसाद के रूप में।
और नीचे है
जिसके चरणों में
शरण की अभिलाष ली
लजीली-सी
लचीली-सी
नतनयना
गतवयना
सती सरस्वती
प्रणिपात के रूप में।

❑❑❑

पथ पूर्ण हुआ

वही अधिष्ठान है

सुख का

मृदु नवनीत

जिसका पुनः

मथन नहीं है,

वही विज्ञान है

..... ज्ञान .....है

निज रीत

जिसका पुनः

कथन नहीं है,

वही उत्थान है

..... थान है

प्रिय संगीत

जिसका पुनः

पतन नहीं है।

❑❑❑

चिन्ता नहीं, चिन्तन

मानस का कूल है
समता का प्रकाश
अन्तिम विकास
तामसता का विलास
अन्तिम ......हास...!
परस्पर प्रतिकूल
दो तत्त्व
एक बिन्दु पर स्थित हैं
दोनों शुभ्र! बाहर से
क्षीर-नीर-विवेक
धीर ..... गम्भीर ..... एक टेक
जीवन लक्ष्य की ओर
बढ़ रहा है इनका
एक का
तत्त्व-चिन्तन के साथ
और एक का
विषय-चिन्ता के साथ
एक साधु है
एक स्वादु...।

❑❑❑

प्रार्थना और ....!

हे परमात्मन्!
यह सब
आपके प्रसाद का ही
परिपाक है पावन,
कि
पाँच खण्ड का प्रासाद
..... पास है
अप्सरा-सी भी प्यारी पत्नी
प्रमदा होकर भी
पति की सेवा में
अप्रमदा है प्रतिपल!
प्राण-प्यारे दो-दो पुत्र
भोग-उपभोग सम्पदा!!
सम्पन्न हूँ.....सानन्द...
किन्तु
एक ही आकुलता है
कि
पड़ोसी का
दस खण्ड का महा भवन!
(मन में खटकता है रात-दिन...!)

❑❑❑

प्यास........

पर-पर फूल रहा था
बार-बार
तन-रंजन में
व्यस्त रहा था
चिर से भूल रहा था
लोकैषणा की प्यास, आस
मेरे आस-पास ही
घूमती थी,
जनरंजन में
व्यस्त रहा था
क्या तो
इसका मूल रहा था
कारण अकारण
मनरंजन में
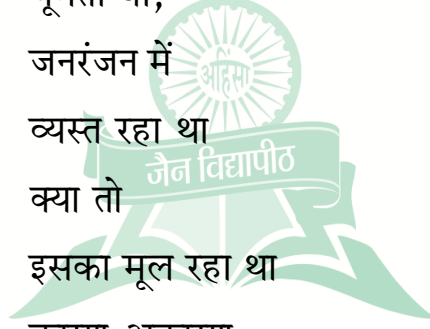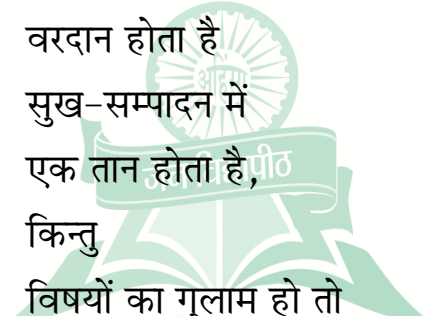
मस्त रहा था
काल प्रतिकूल रहा था
भ्रम-विभ्रम से
भटकता-भटकता
मोह प्रभंजन में
त्रस्त रहा था,
किन्तु आज
शूल भी फूल रहा है
सुगंधित महक रहा है
नीराग-निरंजन में,
चिर से पला
कंदर्प-दर्प
ध्वस्त रहा है
यह सब आपकी कृपा है
हे प्रभो!

❑❑❑

कम-बख्त........!

कोई हरकत नहीं है
हरगिज कह सकता हूँ
यह हकीकत है
कि
हरवक्त
हर व्यक्ति का दिमाग
चलता तो है,
यदि संयत हो तो
वरदान होता है
सुख-सम्पादन में
एक तान होता है,
किन्तु
विषयों का गुलाम हो तो
..... और बे-लगाम हो तो
कमबख्त ! खतरनाक
शैतान होता है।

❑❑❑

मन की खटिया

कृपा पालित कपालवाली
अनुभव-भावित भालवाली
ओ! 'आदिम सत्ता'
कृपा पात्र तो बना ही दिया इसे...
चिर से
युगों-युगों से चुभते थे
जीवन के गहन मूल में
दुखद अभावों के शूल
भावों स्वभावों में
.....................ढले,
बदले आज वे
सुखद फूल हो गये।
जीवन-पादप
पतित-पात था
पलित-गात था
कषाय तपन के
तीव्र ताप से
आज.......

सलिल का सिंचन हुआ
शीतल-शीतल
अनिल का संचरण हुआ
सुर-तरु से
हरे-भरे
आमूल-चूल हो गये,
सुरपति-पदवी
भव-भव वैभव पाने
मन की खटिया पर
वयोवृद्धा आशा
जीवित थी आज तक
दिवंगत हुई वह,
अब सब कुछ बस
जीर्ण-शीर्ण तृण सम
धूल हो गये
सब के सब
मन से बहुत दूर
भूल हो गये।

❑❑❑

खरा सो मेरा

आम तौर से
पके आम की यही पहचान होती है
हाथ के छुवन से
मृदुता का अनुभव
फूटती पीलिमा
तैर आती नयनों में।
फूल समान नासा फूलती है
सुगन्ध सेवन से।
फिर!
रसना चाहती है रस चखना
मुख में पानी छूटता है
तब वह क्षुधित का
प्रिय भोजन बनता है
यही धर्मात्मा की प्रथम पहचान है,
मेरा सो खरा नहीं
खरा सो मेरा
वाणी में मृदुता
तन–मन में ऋजुता
नम्रता की मूर्ति
तभी तो
भव से प्राणी छूटता है
मुक्ति उसे वरना चाहती है
और वह उसका
प्रेम–भाजन बनता है।

❑❑❑

पंकिल पद

धर्म-कर्म से विमुख होकर
पाप-कर्म में प्रमुख होकर
अनुचित रूप से
धनार्जन कर
मान का भूखा बन
दान करने की अपेक्षा
समुचित रूप से
आवश्यक धन का अर्जन कर,
बिना दान भी
जीवन चलाना
पुण्य की निशानी है
कीचड़ में पद रखकर
लथपथ हो
निर्मल जल से
स्नान करने की अपेक्षा
कीचड़ की उपेक्षा कर
दूर रहना ही
बुद्धिमानी है।

❑❑❑

गिरगिट

जिस वक्ता में
धन–कंचन की आस
और
पाद–पूजन की प्यास
जीवित है,
वह
जनता का जमघट देख
अवसरवादी बनता है
आगम के भाल पर
घूँघट लाता है
कथन का ढंग
बदल देता है,
जैसे
झट से
अपना रंग
बदल लेता है
गिरगिट।

❑❑❑

पानी कौन भरे?

इष्टानिष्ट के
योगायोग में
श्रमण का मन
अनुकूलता का
हर्ष का
प्रतिकूलता का
विषाद का
यदि अनुभव नहीं करता
तब यह नियोग है
कि
उसी के यहाँ
प्रतिदिन पानी भरता है
और प्राँगण में
झाड़ू लगाता है 'योग'
और
विराग की वेदी पर
आसीन होता है
शुचि-उपयोग
भोक्ता पुरुष...!

❑❑❑

आस अबुझ

एक हाथ में दीया है
एक हाथ की ओट दिया
हवा से बुझ न पाये,
अपना श्वाँस भी
बाधक बना है आज,
टिमटिमाता जीवित है
जीवन-खेल
स्वल्प बचा है
दीया में तेल
तेल से बाती का सम्बन्ध भी
लगभग टूट चुका है,
जलती-जलती
बाती के मुख पर
जम चुका है
कालुष कालिख मैल,
श्वास क्षीण है
दास दीन है
किन्तु आस अबुझ
नित-नवीन
प्रभु-दर्शन की
कब हो मेल
कब हो मेल...?

❑❑❑

नरम में न रम

अरे! मन

तू रमना चाहता है

श्रमण में रम

चरम चमन में रम

सदा-सदा के लिए

परम नमन में रम

चरम में चरम सुख कहाँ ?

इसलिए अब

स्वप्न में भी भूलकर

नरम-नरम में

न ..... रम! न ..... रम!!

❑❑❑

मेरा वतन

यह जो तन है
मेरा वतन नहीं है
तन का पतन
मेरा पतन नहीं है
प्रकृति का आयतन है,
जन-मन-हारक नर्तन
परिवर्तन ..... वर्तन
अचेतन है
फिर, इसका क्यों हो
गीत...गान...कीर्तन ?
इसका तनातन
स्थायी बनाने का
और यतन
सब का स्वभाव-शील है
कभी उत्थान, कभी पतन
मैं प्रकृति से चेतन हूँ
प्रकाश-पुंज रतन हूँ
सनातन हो नित-नूतन
ज्ञान-गुण का केतन मेरा वतन है
वेदन-संवेदन अनन्त वेतन है
इसलिए मैं
बे-तन हूँ।

❑❑❑

क्षणिकायें........!

हम तट पर ठहरें
आ रही हैं हमारे
स्वागत के लिए
.... साथ लिए
हास्य-मुखी मालायें
लहरों पर लहरें
गरदन झुकी हमारी
झुकी रह गई
मन की आस मन में
रुकी ही रह गई
पता नहीं चला
कहाँ वह गई
पल भर में,
निडर होकर हम भी
खतरे से खतरे
गहरे से गहरे
पानी में
उतरे ..... उतरते ही गये
और हमने पायी
चारों ओर जलीय सत्ता ...!
धीमी-धीमी श्वास भरती
हमें ताक रही चाव से

वह हमें रुचती नहीं
और हम
खाली हाथ लौटते-लौटते
यकायक सुनते हैं
कुछ सूक्तियाँ,
कि
प्रकृति को मत पकड़ो
पर! परखो उसे
वे क्षणिकायें हैं
पकड़ में नहीं आतीं
भ्रम-विभ्रम की जनिकायें हैं,
तुम पुरुष हो, पुरुषार्थ करो
कभी न होना
किसी से प्रभावित
भावित सत् से होना 'जो है'
इसी विधि से कई पुरुष विगत में
उस पार उतरे हैं
और निराशता के बदले आज
गहन गंभीरता से
भर....भर....भरे जा रहे
हमारे ये चेहरे।

❑❑❑

चुनाव

डूबता हुआ विश्व
पा जाये
कूल किनारा
और एक
तरण–तारण
नाव मिली प्रभु से
उस पर कौन–कौन आरूढ़ हुआ ?
प्रभु जानते हैं
और अपना–अपना मन
पता नहीं
आज वह नाव
जीवित है क्या ? नहीं
किन्तु नाव की रक्षा हो
एतदर्थ
एक परियोजना हुई
और वह जीवित है
चुनाव...!

❑❑❑

हरिता की हँसी

गन्ध की प्यास थी जिसे
तरंग क्रम से आई
हवा में तैरती, सुरभि सूँघती
फूली नासा से पूछती हैं
चंचल-आँखें,
कौन-सी संवेदना में डूबी है ?
जिसका दर्शन तक
नहीं हो रहा है
यहाँ भी है स्वाद की भूख
नासा फुस-फुसाती है
कहाँ भाग्यवती हो तुम!
मकरन्द का स्वाद ले सको
प्राप्य को नहीं, अप्राप्य को
निकट से नहीं, दूर से
निहारती हो तुम! सीमित!
दिखाती हूँ, चलो तुम साथ
और फूला फूल
तामसता की राग-राजसता की

रक्ताभ ले व्यंगात्मक

इतरों का उपहास करता

हँसता दर्शित हुआ,

पर! आँखें

घबराती-सी कहती हैं

सब कुछ रुचता है

सब में मृदुता है

पर!

रक्ताभ राजसता

चुभती है हमें

और कलियों का

जो हरीतिमा से भरी

चुम्बन लेती

प्रभु से प्रार्थना करती है

हे हर्ष-विषाद-मुक्त!

हरि-हर!

हर हालत में

हर सत्ता से

हरीतिमा-हरिताभ

फूटती रहे

हँसती रहे

धन्य...!

❑❑❑

छुवन......!

प्रकृति-प्रमदा

प्रेम वश

पुरुष से लिपटी

हरिताभ हँस पड़ी

प्रणय-कली

महकी गन्ध भरी

खुल-खिल पड़ी

रक्ताभ लस रही

किन्तु!

पुरुष सचेत है

वह डूबा नहीं

प्रकृति जिसमें डूबी है

पुरुष की आँखों में

हीराभ-मिश्रित

नीलाभ बस रही।

❑❑❑

सत्य, भीड़ में!

कहाँ क्या ? था विगत में
.........ज्ञात नहीं
अनागत की गात भी
.... अज्ञात ही
आगत की बात है
अनुकरण की नहीं
जहाँ तक सत्य की बात है
देश-विदेश में ..... भारत में भी
सत्य का स्वागत है
आबाल वृद्धों, प्रबुद्धों से
किन्तु
खेद इतना ही है
कि
सत्य का यह स्वागत
बहुमत पर
आधारित है।

❑❑❑

तुम कण; हम मन

मन का इंजन है

तन धावमान है

इंगित पथ पर,

पर! उलझन में मन है

कभी करता है 'था' में गमन!

कभी सम्भावित में

भ्रमण-चंक्रमण

कब करता है ? भावित रमण!

कभी विमन रहता

कभी सुमन

श्रमण का भी मन

और कुछ भूला सा

विगत में लौटा है

दयार्द्र कण्ठ है

कुछ कहना चाहता है

कण्ठ कुण्ठित है

लौट आ आशु गति से

तन से कहता मन

तुम साथ चलो

हम तीनों अपराधी हैं
तन-वचन और मन
और तीनों आ
सविनय कहते हैं
पद-दलित-कंकरों को
तुम लघुतम कण हो
निरपराध हो,
हम गुरुतम मन हो
सापराध हैं
तुम पर पद रख कर
हिंसक हो, अहिंसक से
पथ चलते गये,
पर!
प्रतिकूल गये
भूल के लिए
क्षमा-याचना तक
भूल गये,
लौट आये हैं
अपराध क्षम्य हो
अब कंकर बोलते हैं
अपने मुख खोलते हैं
अपने आचरण पर
फूट फूट रोते हैं
नहीं ..... नहीं ..... कभी नहीं
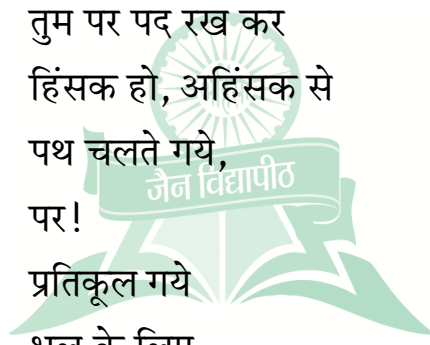
इस विनय को हम स्वीकारते नहीं
अन्यथा धरती माँ
धारण नहीं करेगी हमें
नीचे खिसकेगी
सब सीमा–मर्यादायें
..... ठस होंगी ...
तारण–तरणों की
चरण–शीलों की
चरण–रज
सर पर लेनी थी,
हाय! किन्तु
कठिन–कठोर हैं
अधम घोर हैं
हम सब
तीन पहलूदार तीखे
त्रिशूल.....शूल हैं
हम स्थावर हैं
परम पामर हैं
निर्दय–हृदय शून्य,
तुम चर हो जंगम
चराचर बन्धु!
सदय हो अभय–निधान
सत्पथ पर यात्रित हो

पदयात्री हो
कर-पात्री हो,
लाल-लाल हैं
कमल-चाल है
युगम पाद तल
तुम सब के,
छिल गये हैं
जल गये हैं
लहूलुहान हो
और ललाई में
ढल गये हैं
जिनमें
गोल-गोल आँवले से
फफोले फोले
पल गये हैं
यह कठोरता की
कृपा है हमारी
अपवर्ग पथ पर चलते तुम
उपसर्ग हुआ
हमसे तुम पर
उपकार दूर रहा
अपकार भरपूर रहा
तुम्हारे प्रति हमारा,

अपराध क्षम्य हो
तुम लौट आये
कृपा हुई हम पर
हम अपद हैं
स्वपद हीन
कैसे आते चलकर तुम तक,
स्वीकार करो अब
शत-शत प्रणाम
और आशीष दो
हम भी तुम सम
शिव-पथ पथिक
गुणों में अधिक
.....बन सकें
और...
साधना की ऊँचाईयाँ
शीघ्रातिशीघ्र चढ़ सकें
ध्रुव की ओर ..... बढ़ सकें
बन सकें हम
अन्ततोगत्वा
तुम सम श्रमण
और चमन!

❑❑❑

हुंकार अहं का

कृति रहे

संस्कृति रहे

चिरकाल तक

मात्र! जीवित!

सहज प्रकृति का

शृंगार-श्रीकार

मनहर आकार ले

जिसमें आकृत होता है,

कर्ता न रहे

विश्व के सम्मुख

विषम विकृति का

अपार संसार

अहंकार का हुंकार ले

जिसमें जागृत होता है

और हित...

..... निराकृत होता है।

❑❑❑

मिलन नहीं; मिला लो!

काया के मिलन से
माया के छलन से
ऊब गया है यह
भटकता-भटकता
विपरीत दिशा में
खूब गया है यह
सहचर हैं बहुत सारे
पर! कैसे लूँ ?
सहयोग उनसे
अंधों से कंधों का सहारा
मिल सकता है
किन्तु
पथ का दर्शन-प्रदर्शन संभव नहीं है
यह भी अंधा है
इसे आँख मत दो... भले ही
मत दो प्रकाश
किन्तु
हस्तावलम्बन तो दो!
इसे ऊपर लो गर्त से
और मिलन नहीं
अपने आलोक में मिला लो
हे सब द्वन्द्वों से अतीत!
अजित! अभीत!

❑❑❑

रंगीन व्यंग

बालक और पालक
दो दर्शक हैं
हरित-भरित
मनहर परिसर है
सरवर तट है
श्वाँस-श्वाँस पर
तरंग का
प्रवास चल रहा है
अंतरंग गा रहा है
तरंग-रंग
भा रहा है
तभी तो
बालक का प्रतिपल
प्रयास चल रहा है
बहिरंग जा रहा है
तरंग पकड़ने,
और निस्संग तट में
फेन का बहाना है
हास चल रहा है
या उपहास चल रहा है ?
बालक पर क्या ? पालक पर
पता नहीं किस पर ?

❑❑❑

मन की मौत

स्मृति का विकास
विज्ञता का
स्मृति का विनाश
अज्ञता का
प्रतीक है,
यह मान्यता
लौकिक है
अलौकिक नहीं
इसलिए यह
अलीक है
किन्तु
स्मरण का मरण ही
यथार्थ ज्ञान है।

❑❑❑

प्रलय-काल ......!

अन्याय की उपासना कर

वासना का दास बनकर

धनिक बनने की अपेक्षा

न्याय-मार्ग का उपासक बन

धनिक नहीं बनना भी

श्रेष्ठतम है,

किन्तु

अकर्मण्यता

मानव मात्र को

अभिशाप है

महा पाप है

कारण!

अन्याय से जीवन बदनाम होता है

न्याय से नाम होता है

जीवन कृतकाम होता है

जबकि!

अकर्मण्य की छाँव में

जीवन तमाम होता है।

❑❑❑

पेट से पेटी

अन्न पान से
पेट की भूख
जब शान्त होती है
तब जागती है
रसना की भूख,
रस का मूल्यांकन!
नासा सुवास माँगती है
ललित-लावण्य की ओर
आँखें भागतीं हैं,
श्रवणा उतारती
स्वरों की आरती है
मन मस्ताना होता है
सब का कपताना होता है
आविष्कार कपाट का होता है
अन्यथा
फण-कुचली-घायल नागिन-सी
बिल से बाहर
निकलती नहीं हैं
ये इन्द्रिय-नागिन!

❑❑❑

बोझिल पद

कभी-कभी
आशा निराशता में
घुल जाती है
हे प्राणनाथ!
अन्तिम ऊँचाई है वह
लोक शिखर पर बसे हो,
अन्तिम सिंचाई है वह
अनुपम द्युति से लसे हो
यह भी सत्य है, कि
अन्तिम सिंचाई है वह
कमल फूल से हँसे हो
किन्तु तुम्हें
निहार नहीं सकता
ऊपर उठाकर माथा
दूरी बहुत है
तुम तक विहार नहीं हो सकता
पद यात्री है यह
इसलिए
इसकी दृष्टि से
ओझल हो गये हो,
कारण विदित ही है
इसके माथे पर
चिर-संचित पाप का भार है
फलस्वरूप
इसके पद बोझिल हो गये हैं
और तुम
ओझल हो गये हो।

❑❑❑

सन्धि, अन्धी से

इस बात को स्वीकारना होगा
कि
आँख के पास
श्रद्धा नहीं होती है
क्योंकि
जब कुछ नहीं दिखता एकान्त में
आँखें भय से कंपती हैं,
और!
श्रद्धा!!
अन्धी होती है,
किन्तु
श्रद्धा के पास
उदारतर उर होती है
जिसमें मधुरिम-
सुगन्धि होती है
प्रभु का नाम जपती है,
तभी तो
सहज रूप से
अज्ञेय किन्तु
श्रद्धेय प्रभु से
सन्धि होती है
श्रद्धा! अन्धी होती है।

❑❑❑

काया, माया

वह गृहस्थ

जिसके पास

कौड़ी भी नहीं है

कौड़ी का नहीं है,

वह श्रमण

जिसके पास

कौड़ी भी है

कौड़ी का नहीं है,

एक की शोभा

माया है

राग-रंग

और एक की

मात्र काया

त्याग-संग।

❑❑❑

समता.....!

भुक्ति की ही नहीं
मुक्ति की भी
चाह नहीं है
इस घट में,
वाह-वाह की
परवाह नहीं है
प्रशंसा के क्षण में
दाह के प्रवाह में अवगाह करूँ
पर! आह की तरंग भी
कभी न उठे
इस घट में ..... संकट में
इसके अंग-अंग में
रग-रग में
विश्व का तामस आ
भर जाय
किन्तु विलोम-भाव से,
यानी!
ता....म....स....स....म....ता!

❑❑❑

दयालु पंजे.....!

खर-नखरदार
जिसके पंजे हैं
कभी चूहों का
शिकार खेलती है,
कभी प्राण प्यारे
संतान झेलती है,
जिन पंजों में
प्यार पलता है
उन्हीं पंजों में
काल छलता है
ऐसा लगता है
किन्तु पंजे आप
हिंसक हैं, न अहिंसक
प्राण का पलना
काल का छलना
यह अन्तर घटना है
बाहर अभिव्यक्ति है
तरंग पंक्ति है
घटना का घटक
अन्दर बैठा है
अव्यक्त-व्यक्ति है वह,
उसी पर आधारित है यह
वही विश्व को बनाता भुक्ति
वही दिलाता विश्व को मुक्ति
हे! भोक्ता पुरुष!
स्वयं का भोग कब करेगा ?
निश्छल योग कब धरेगा ?

❑❑❑

द्विमुख पंथी .....!

सम्यक् साधन हो

सत् शक्ति हो

समाराधन हो

सद् भक्ति हो

अमूर्त भी साध्य

मूर्त हो उठता है

अमूर्त आराध्य

स्फूर्त हो उठता है,

यह सदुक्ति चरितार्थ होती तब,

'एक पंथ दो काज'

असम्भव कुछ नहीं

बस! सब कुछ सम्भव है

भुक्ति और मुक्ति

युगपत् ताकती है उसे

सत्पथ का पथिक बना है

किन्तु

द्विमुख-पंथी 'सो'

पथ पर चल नहीं सकता

अनन्त का फल चख नहीं सकता।

❑❑❑

संन्यास.....!

बहुतों के मुख से यही सुनता आया था
विश्वस्त हो यही गुनता आया था
कि
सबसे नाता तोड़ना
वन की ओर मुख मोड़ना
संन्यास है,
किन्तु आज
गुरु कृपा हुई है
ठीक पूर्व से विपरीत
विश्वास हुआ है
संन्यास का अहसास हुआ है,
कि
बिना भेद-भाव से
बिना खेद-भाव से
बस मात्र
एक वेद-भाव से
एक साथ
सब के साथ
साम्य का नाता जोड़ना
और 'मैं' को
विश्व की ओर मोड़ना ही
सही संन्यास है।

❑❑❑

मोम बनूँ मैं..........

वरद हस्त जो रहा है
इस मस्तक पर
हे गुरुवर!
कठिन से कठिनतर
पाषाण-हृदय भी
मृदुल मोम हो गए,
दु:ख की आग बरसाते
प्रचण्ड प्रभाकर भी
शरद सोम हो गए,
विरोध की ज्वाला से जलते
विलोम वातावरण भी
अनुलोम हो गए
चेतना की समग्र सत्ता
भय से संकोचित, मूर्च्छित थी आज तक
अब वह अभय-जागृत
पुलकित रोम-रोम हो गए
प्रति-धाम से
प्रति-नाम से
मधुर-ध्वनि की तरंग आ रही है
श्रवणों तक
बस! वह सब
सुखद ओम् हो गए।

❑❑❑

कुटिया.....!

ओ री! कलि की सृष्टि
कलि से कलुषित
कलंकिनी दृष्टि!
सदा शंकिनी!
अवगुण अंकिनी!
कभी-कभी तो
गुण का चयन किया कर!
तेरी वंकिम दृष्टि में
केवल अवगुण ही झलकते हैं क्या ?
यहाँ गुण भी बिखरे हैं
तरतमता हो भले ही
ऐसा कोई जीवन नहीं है
कि
जिसमें
एक भी गुण नहीं मिलता हो
नगर-उपनगर में
पुर-गोपुर में
अभ्रंलिह प्रासाद हो
या कुटिया
जिसके पास
कम से कम एक तो
प्रवेश द्वार
होता अवश्य!

❑❑❑

अनमोल की आस

याचना का चोला पहना
यातना का पहना गहना
आँगन-आँगन
कितने प्राँगण ?
घूमा है यह
सुख-सा कुछ
मिलता आया
और मिटता आया
सुख की आस अमिट!
आज तक!
अमित मिला नहीं
अमिट मिला नहीं
हे! अनन्त सन्त!
अब मोल नहीं
अनमोल मिले!

❑❑❑

माहोल की प्यास

ओ! श्रवणा

कितनी बार

श्रवण किया,

ओ! मनोरमा

कितनी बार

स्मरण किया

कब से चल रहा है

संगीत-गीत यह

कितना काल व्यतीत हुआ

भीतरी भाग भीगे नहीं

दोनों अंग बहरे

कहाँ हुए

हरे भरे!

हे! नीराग हरे!

अब बोल नहीं

माहोल मिले।

❑❑❑

संयत आँखें

डाल-डाल के
गाल-गाल पर
लाल-लाल हैं
फूल गुलाब!
फूल रहे हैं
लज्जा की घूँघट
खोल-खोल कर
अधर में डोल रहे
मार्दव अधरों पर
कल-कमनीयता
भीतरी संवेदन
रहस्यमय बोल
बोल रहे हैं
अनमोल रहे
या मोल रहे,
यह एक प्रश्न है
दर्शकों के सम्मुख
और उस ओर
पराग प्यासा
सुगन्धमोजी

भ्रमर दल ने

अपलक

एक झलक

दृष्टिपात किया

बस! धन्य!

इतने से ही

आँखों का पेट भर गया

तृप्ति का अनुभव,

अपने में

रूप-रंग समेट कर

पलक बन्द हुए

और रसना

गुनगुनाती

प्रारम्भ हुआ

गुण-गान-कीर्तन

हाव-भाव

टुन..... टुन..... नर्तन,

किन्तु नासा की भूख

दुगुणी हुई

गंध से मिलने

बातचीत करने

लालायित है
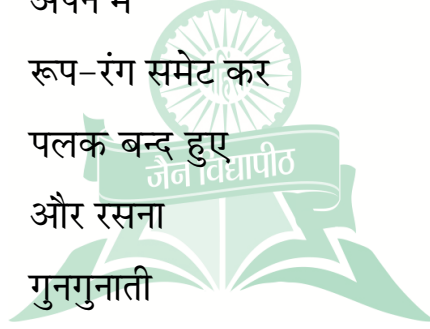
उतावली करती–करती
गम्भीर होती जा रही है
जैसे कहीं
विषयी उपस्थित होकर भी
विषय अनुपस्थित हो,
अब नासा
अपनी अस्मिता पर
शंकित होती
कि
इस समय
मैं हूँ क्या नहीं ?
यदि हूँ,
गंध का स्वाद
क्यों नहीं आता,
जब कि गंधवान्
उपस्थित है सम्मुख
इसी बीच स्पर्शा भी
इस विषय में
सक्रिय होती
अपनी तृषा बुझाने,
जब वह छुवन हुआ
स्पर्शा ने घोषणा कर दी
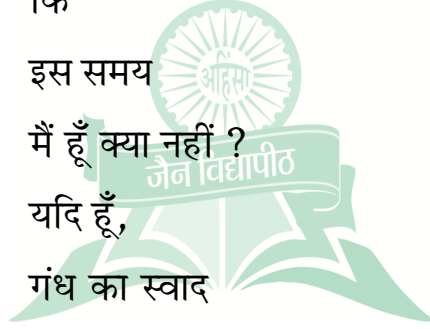
कि
यहाँ प्रकृति नहीं है
मात्र प्रकृति का अभिनय है
या प्रकृति का अविनय है
माया छल
ये फूल तो हैं
पर! कागद के हैं
तब तक
नासा की आसा
निराशता में लज्जावश
डूबती चली
फलस्वरूप
भ्रम विभ्रम से
भ्रमित हुआ
भ्रमर-दल
उड़ चला वहाँ से,
गुनगुनाता, कहता जाता
कि
सत्य की कसौटी
नेत्र पर नहीं
संयम-नियंत्रित
ज्ञान-नेत्र पर
आधारित है।

❑❑❑

नाटक

सारा का सारा

यह संसार

केवल है

एक विशाल नाटक,

तू इसमें

भाँति-भाँति के भेष-धर

भाग ले,

तू इसे खेल

कोई चिन्ता नहीं

किन्तु

इस बात का भी ध्यान रख

इसमें तू

.....कभी

.....भूल कर भी...

.....ना-अटक...!

❑❑❑

सरगम स्वरातीत

सत् से जन्म ले
सत् में छद्म ले
हरदम होती हो
हरदम खोती हो,
कभी-कभी
अभाव के घाव पर
मरहम होती हो
स्वरातीत भाव पर
सरगम होती हो
केन्द्र को छोड़ कर
परिधि की ओर
दौड़ रही हो,
अनन्त को छोड़ कर
अवधि की ओर
मोड़ रही हो स्वयं को
ओ! लहरों पर लहरें
रजत राजित गजरे
उत्तर दो!
इस ओर भेजकर
सरलिम तरलिम नजरें!

❑❑❑

बधिर बनूँ

निर्गुण से मिलने का
वार्ता-विचार विमर्श कर
तदनु चलने का
सगुण परमात्मा में
भावुक-भाव
उभर आया है,
और इधर
सघन नीलिमा ले
नील-गगन
नीचे की ओर
उतर आया है,
बीच में बाधक बनकर
साधक के साधना-पथ पर
तभी तो
कहीं नियति ने भेजी है
बाधा दूर करने
अरुक अथक
अविरल उठती आ रही हैं
लहरों पर लहरें,
इनकी ध्वनि
ये ही सुन सकते
जो वैषयिक क्षेत्र में
बने हैं पूर्ण बहरे!

❑❑❑

चख जरा

शाश्वत निधि का
भास्वत विधि का
..... धाम हो
राम, अभिराम हो
क्यों बना तू!
रावण सम
आठों याम
दीन–हीन
पाप–प्रवीण,
'है' उसे
बस लख जरा
बहुत दूर जाकर
चेतना में
लीन हो
सुधा–पीयूष
बस! चख जरा।

❑❑❑

अवतार......!

उतरा धरा पर
चिद्‌विलास
मानव बन
करनी कर
मानव-पन .....पा
मानव पनपा,
तू मान वही
मान प्रमाण का पात्र बना
पायी..... अन्तिम शान्ति
.....विश्रान्ति
फिर वहाँ से लौटा कहाँ ?
लौटना अशान्ति है
क्लान्ति, भटकन भ्रान्ति है
दुग्ध का विकास होता है
घृत का विलास होता है
घृत का लौटना किन्तु
दुग्ध के रूप में
सम्भव नहीं है।

❑❑❑

छले छाँव में

काया की नाव में पले हैं

माया की छाँव में छले हैं

हम तो .... निरे

अनजान ठहरे

इतने विचार

कहाँ हों गहरे

नहरों से पूछें

या लहरों से

कहाँ से आती

कहाँ जाती

...... ये लहरें ?

लहरों पर लहरें हैं

क्या ? लहरों में लहरें।

❑❑❑

कैंची नहीं, सुई बन

चिर से बिछुड़े

दो सज्जन मिलते हैं

वृद्धावस्था में

परस्पर प्रेम वार्ता होती है

गले से गले मिलते हैं

गद्गद कण्ठ से,

एक ने पूछा एक से

तुमने क्या साधना की है

पर के लिए और अपने लिए ?

उत्तर मिलता है

द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ना हो

टूटे दो टुकड़ों को

एक रूप देना हो

तो सुनो

सुई होना सीखा है !

फिर दूसरे ने भी पूछा

इस दीर्घ जीवन में
ऐसी कौन सी साधना की तुमने
फलस्वरूप सब के स्नेह-भाजन हो,
उत्तर मिलता है
कि
कर्म के उदय में
जो कुछ होना सो होना है
सो धरा-सा
जरा होना सीखा है
दूसरों के सम्मुख
अपनी वेदना पर
भला! रोना ना सीखा है,
हाँ!
दूसरा आ अपनी
व्यथा-कथा
सुनाता हो, रोता हो
यह मन भी व्यथित हो रोता है
और तत्काल
उसके आँसू
जरा धोना सीखा है।

❑❑❑

मौन मालती

ओ री मानवती
मृदुल मालती
क्यों न मानती,
मुड़-मुड़ कर....
मोहक-मादक
मदिरा भर कर
प्याला लेकर
मेरे सम्मुख
आती है,
अपना ही गीत
गाती है
तू रागिनी है
.....स्वैर विहारिणी है
विरागिनी यह मति
बाध्य होकर
बाहर आती है
नाक फुलाती सी
नासिका कहती यूँ
तभी मालती भी
गूढ़ तत्त्व का उद्घाटन करती है
मौन रूप से
कि
ज्ञेय तत्त्व भिन्न है
ज्ञान तत्त्व भिन्न है
ज्ञेय का अपना रूप
......स्वरूप है,
क्रिया-कर्म है

ज्ञान का अपना भाव-स्वभाव है
गुण धर्म है
यद्यपि
ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है हम दोनों में
ज्ञान जानता है
ज्ञेय जाना जाता है
किन्तु
ज्ञान जब तक
निज को तज कर
पर को अपना विषय बनाता है
निश्चित ही वह
सराग है सदोष तब तक
पर का आदर करता है
अपना अनादर,
तब, 'पर' पर आरोप आता है
कि
पर ने राग जमाया
ज्ञान में दाग लगाया
मैं तो अपने में थी
हूँ ..... रहूँगी चिर काल .....!
किन्तु...... तू
ओ री नासिका!
तू ज्ञान की उपासिका कहाँ है ?
ज्ञान की उपहासिका है
अपनी सुरभि भूल जाती है
पर सुगन्धि पर फूल आती है
यह कौन-सी विडम्बना है
स्वयं को धोखा देना।

❑❑❑

बादल धुले

धरती को प्यास लगी है

नीर की आस जगी है

मुख-पात्र खोला है

कृत-संकल्पिता है,

कि

दाता की प्रतीक्षा नहीं करना है

दाता की विशेष समीक्षा नहीं करना है

अपनी सीमा

अपना आँगन-

भूल कर भी नहीं लाँघना है,

क्योंकि

पात्र की दीनता

निरभिमान दाता में

मान का आविर्मान कराती है

पाप की पालड़ी भारी पड़ती है,

और!

स्वतन्त्र स्वाभिमान पात्र में

परतन्त्रता आती है

कर्त्तव्य की धरती

धीमी-धीमी नीचे खिसकती है,

तब!
लटकते दोनों अधर में
तभी तो
काले-काले
मेघ सघन ये
अर्जित पाप को
पुण्य में ढालने
जो सत्पात्र की गवेषणा में निरत हैं
पात्र के दर्शन पाकर
गद्गद हो
गड़गड़ाहट ध्वनि करते
सजल-लोचन
सावन की चौंसठ-धार
पात्र के पाद-प्रान्त में
प्रणिपात करते हैं
फिर तो
धरती ने बादल की कालिमा
धो डाली
अन्यथा
वर्षा के बाद
बादल-दल
विमल होते क्यों ?

❑❑❑

मुक्तिका

क्यों मुग्ध हुआ है

शुक्तिका पर

शुक्ति का खोल

एक बार तो झाँक ले

और! आँक ले,

भीतर की मुक्तिका पर

सदा-सदा के लिए

अवश्य मुग्ध होगा!

कहाँ भटकता तू

बीहड़ जंगल में

बाहर नहीं

हे सन्त!

वसन्त बहार

भीतर मंगल में है।

❑❑❑

तोता क्यों रोता ?

प्रभाकर का प्रचण्ड रूप है
चिल-चिलाती धूप है
निदाघ का अवसर है
भरसक प्रयास चल रहा है
सरपट भागना चाह रहा है,
पर! भाग नहीं पा रहा है भानु
सरक रहा है धीमे-धीमे
अस्ताचल की ओर,
और इधर
सर फट रहा है
फलभार ले झुका है
तपी धरा पर नग्न-पाद
आम्र-पादप खड़ा है
अपने प्रांगण में,
दाता के रूप में
पात्र की प्रतीक्षा है
लो! पुण्य का उदय आया है
कठिन परिश्रमी
हरदम उद्यमी
पदयात्री पथिक

पथ पर चलता-चलता
रुकता है निस्संकोच
सघन छाँव में
घाम-बचाव में
किन्तु यकायक
दाता का मन पलटता है
विकल्प-विकार से लिपटता है
कि
पात्र के मुख से
वचन तो मिलें
मीठे-मीठे
मिश्री मिले
प्रशंसा के रूप में,
महान दाता हो तुम
प्राण-प्रदाता हो तुम
और दान-शास्त्र की
जीवन गाथा हो तुम!
आदि, आदि
अथवा
कम से कम खड़े-खड़े
दीन-हीन से
याचना तो करे
दोनों हाथ पसार

अपना माथ सँभार
और दाता को
मान-सम्मान से पुरस्कृत करे,
कुछ तो करें
दाता कुछ देता है
तो, प्रतिफल के रूप में
कुछ लेना भी चाहता है
लेन-देन का जोड़ा है ना!
लो! संतों की वाणी भी
यही गाती है
'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'
अस्तु!
और!
मौन सघन होता जा रहा है
अपना-अपना कर्त्तव्य
गौण, नगन होता जा रहा है
इस स्थिति में
कौन ? रोक सकता है इस प्रश्न को,
कि
कौन ? विघन होता जा रहा है
दाता की मुख-मुद्रा
हृदय का अनुसरण कर रही है

और भाव-प्रणाली
ललाट-तल पर आ
तरल तरंगायित है
भ्रमित भंगायित है
जो कुछ है वितरण कर रही है,
और इसी बीच
अयाचक-वृत्ति का पालक पात्र
मौन मुद्रा से
समयोचित भावाभिव्यक्ति
सहज-भाव से करता है,
कि,
हे आर्य!
दान देना
दाता का कार्य है
प्रतिदिन अनिवार्य है
यथाशक्ति
तथाभक्ति
मान-सम्मान के साथ,
पाप को पुण्य में ढलना है ना!
और यह भी सत्य है
पात्र मान-सम्मान के बिना
दान स्वीकार नहीं करेगा,

कारण विदित ही है
दान क्रिया में दाता
प्रायः मान करता है
अहं का पोषक बनता है,
और पात्र यदि
दीनता की अभिव्यक्ति करता है
स्वाधीनता का शोषक बनता है
किन्तु!
मोक्ष-मार्ग में
यह अभिशाप सिद्ध होता है
इससे विरुद्ध चलना
वरदान सिद्ध होता है,
इसलिए
समुचित विधान यही है
दान से पूर्व मान-सम्मान हो
वह भी भरपेट हो
बाद में दान
भले ही अल्प..... अधपेट हो
सहर्ष स्वीकार है
और यह भी ध्यान रहे
याचना, यातना की जनी है
कायरता की खनी है
इस पात्र को
कैसे छू सकती है वह,

यह वीरता का धनी है
सदा-सदा के लिए
इसमें धीरता आ ठनी है
लो! और यह कैसा विस्मय!
फलों की भीड़ से घिरा
नीड़ में बैठा-बैठा
निस्संग तोता
इस मौन वार्ता को पीता है
जो मांसाहार से रीता...है
...............जीवन जीता है,
स्वैरविहारी है
फलाहारी है
अतिथि की ओर निहारता है अनिमेष!
मन ही मन विचारता है
अभूतपूर्व घटना है मेरे लिए
प्रभूत पुण्य मिलना है मेरे लिए
और सुरभि से निरा महकता
सुन्दरता से भरा चहकता
पक्व रसाल चुनता है
अतिथि के लिए
दान हेतु,
किन्तु

तत्काल क्या हुआ
सुनो तुम!
मनोविज्ञान में निष्णात जो है
अतिथि की ओर से
मौन-भाषा की शुरुआत और होती है
कि
यह भी दान स्वीकार नहीं है इसे
यद्यपि इसमें
पूर्व की अपेक्षा
मान-सम्मान का पुट है
और भरपूर है,
किन्तु!
दाता दान को मजबूर है
पात्र को देखकर
और!
पर-पदार्थ को लेकर
पर पर-उपकार करना
दान का नाटक है
चोरी का दोष आता है
यदि अपनत्व का दान करते हो
श्रम का बलिदान करते हो
स्वीकार है,
अन्यथा यह सब वृथा है
तथा स्व-पर के लिए
सर्वथा व्यथा है।
दान की कथा सुनकर

मूक रह जाता तोता
भीतर ही भीतर
उसका मन व्यथित होता है
अकर्मण्य जीवन पर रोता है
तन भी मथित होता है उसका,
और!
सजल-लोचन कर
निजी आलोचन कर
प्रभु से प्रार्थना करता है
अगला जीवन इसका
श्रम-शील बने
शम-झील बने
और! बहुत विलम्ब करना उचित नहीं
अतिथि लौट न जाये
खाली हाथ!
ऐसा सोचता हुआ
उसी पल एक
पका फल
अननुभूत भाव से
अपने आपको
भरा हुआ-सा
अभिभूत अनुभूत करता है
पूत-सफलीभूत बनाने
जीवन को दान-दूत बनाने

जिसमें नव-नवीन भाव
प्रसूत होता है
कर्त्तव्य के प्रति
प्रस्तुत करता है
अतिथि का रूप निरखकर
अतिथि का स्वरूप परखकर
जीवन को दिशा मिल गई,
चिर से तनी
और घनी निशा टल गई
दान की उपासना
...............जागृत हुई
मान की वासना
...........निराकृत हुई
राग, विराग से मिलने
............आकुल है
पंक, पराग से मिलने
..........आतुर है,
और
बन्द अधर खुलते हैं
शब्द 'अधर' डुलते हैं
आगत का स्वागत हो
अभ्यागत आदृत हो
सेवा स्वीकृत हो

सेवक अनुगृहीत हो
हे स्वामिन्! हे स्वामिन्! हे स्वामिन्!
और दान कार्य सम्पादन हेतु
सहयोग के रूप में पवन को
आहूत करता है
वन-उपवन-विचरणधर्मा
तत्काल आता है पवन
फल से पूर्व-भूमिका विदित होती है उसे
कि
ये पिता हैं (वृक्ष की ओर इंगन)
इनका पित्त प्रकुपित है
तभी मुझ पर कुपित हैं
आँगन में अतिथि खड़े हैं
ये अपनी धुन पर अड़े हैं
स्वयं दान देते नहीं
देने देते नहीं,
मान प्रबल है इनका
ज्ञान समल है इनका
मेरे प्रति मोह है
पर के प्रति द्रोह है
क्या ? पूत को कपूत बनाना चाहते हैं ये
पूत-पवित्र नहीं,
और पवन को इंगित करता है पका फल
मैं बन्धन तोड़ना चाहता हूँ
इस कार्य में सहयोग आपेक्षित है
'समझदार को इशारा काफी है'

सूक्ति चरितार्थ हुई,
और पवन ने
एक हल्का-सा
झोंका दे दिया
प्रकारान्तर से
वृक्ष को धोखा दे दिया
रसाल फल
डाल से खिसक कर
शून्य में दोलायित हुआ
अर्पित होने, लालायित हुआ
चिर के लिए बन्धन/क्रन्दन
पलायित हुआ,
पुनः पवन को समझाता है
मुझे इधर-उधर नहीं गिराना
सीधा बस!
पात्र के पाणि-पात्र में गिराना
और एक झोका देने पर
डाल के गाल पर!
फल, कर में आ पात्र के
अर्पित होता है,
स्वप्न साकार होता है
और सत्कार्य में भाग लेकर
पवन भी बड़भागी बनता है
पाप-त्यागी बनता है
सज्जन समागम से
रागी विरागी बनता है

नीर, क्षीर में गिरता है
शीघ्र क्षीर बनता है,
और पथ पर
सहज चाल से पूर्ववत्
चल पड़ा वह अतिथि
उधर डाल के गाल पर
लटकता अधपका
फलों का दल
बोल पड़ा
कि
कल और आना जी!
इसका भी भविष्य उज्ज्वल हो
करुणा इस ओर भी लाना जी!
अतिथि की हल्की-सी मुस्कान
कुछ बोलती-सी!
यह भविष्य में जीता नहीं
अतीत का हाला पीता नहीं
यही इसकी गीता है
सरगम-संगीता है,
देखो! क्या होता है
जिसके बीच में रात
उसकी क्या बात ?
और वह देखता रह जाता फलों का दल
सुदूर तक दिखती
अतिथि की पीठ
पुनरागमन की प्रतीक्षा में...!

❑❑❑

गीली आँखें

इसे निर्दयता कहना
अनुचित होगा
अपनी चरम-सीमा सूँघती हुई
निरीहता नितान्त है
निरभ्र-नभ में,
पूत-प्रतिमा सी पीठ
प्रतिफलित है
ध्रुव की ओर उठते चरण दिख रहे
किन्तु
सारी करुणा सिमट कर
आँखों में चली गई है,
वे आँखें कहाँ दिखतीं
और कहाँ देखतीं
मुड़ कर इसे
नीली आँखें!
और ईहा की सीमा पर
आकुल अकुलातीं
इसकी दोनों
पीली-पीली
हो आती
गीली आँखें।

❑❑❑

हास्य के कण

वह कौन-सा मानस है
जिसके भीतर
कुछ अपूर्व घट रहा है
जिसका उद्घाटन
उठती हुई लहरों पर लहरें
करती जा रही हैं,
हर लहर पर
हास्य के कण
बिखरे हैं..... बिखरते जा रहे हैं
और यह भी मानस
जिसके नस-नस
जल रहे हैं
इसके भीतर
बड़वानल उबल रहा अभाव का,
तभी तो जीवन सत्त्व
राख बने,
काले काले बाल के मिष
बाहर आ उभरे हैं
जिन पर मोहित हैं
शाम सबेरे
जहरीली नजरें

❑❑❑

सातत्य

मृदु मंजुलता
ललित लता पर
कल तक थी
मुकुलित कली
आज उषा में
खुली खिली है
और सुषमा
सुरभि लेकर!
कल रहेगी
काल-गाल में
कवलित होकर!
किन्तु सत् की
कमनीयता वह
सातत्य ले साथ
सब में ढली है
उसकी छवि
किसे मिली है ?

❑❑❑

आभा की डूब

जहाँ तक आभा की बात है

वह निश्चित

प्रकृति की गन्ध है,

जो...

पुरुष की पकड़ में

इन्द्रियों के आधार से

आज तक आई है,

चाहे नीलाभ हो

या हीराभ!

चाहे हरिताभ हो

या रक्ताभ,

किन्तु आज यह

इस पुरुष को पकड़ना चाहती है

जो सब अभावों से

अतीत हो जी रहा है।

❑❑❑